सी.एच.आर.आई.

अंक ३

मई २०१०

लोक पुलिस

जनतांत्रिक पुलिस के लिए

मासिक पत्रिका

पुलिस प्रशिक्षण–अवसंरचना को मज़बूत करना होगा

पुलिस की अधिकतर मौजुदा परेशानियों का एक बड़ा कारण मलिन और लगातार न होने वाला प्रशिक्षण है। शुरूआती अध्ययन पर्याप्त नहीं है, शारिरिक योग्यता पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है जबकि नाजुक योग्यताओं पर ध्यान नहीं दिया जाता। प्रशिक्षण के हर स्तर पर सुधार की आवश्यकता को नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता है।

सीमा सुरक्षा बल में ट्रेनिंग अकादमी के डायरेक्टर पद को संभालने वाले तथा भूतपुर्व हरियाणा पुलिस अकादमी के डायरेक्टर श्री वी. एन. राय से पुलिस प्रशिक्षण के मुद्दे पर जीनत मलिक का साक्षात्कार। श्री राय को हरियाणा पुलिस अकादमी के डायरेक्टर के तौर पर उपरोक्त कठिनाईयों से जुझने के लिए जाना जाता है। यह साक्षात्कार एक कोशिश है उनके द्वारा उन्नतिशील नेतृत्व को समझने की।

क्या वर्तमान पुलिस प्रशिक्षण में कोई कमी है? यदि है तो क्यों है और इसे कैसे दूर किया जा सकता है?

मैं इसका जवाब यह बताकर देना चाहुंगा जो हमने हरियाणा में किया। सबसे पहले हमने डंडा और हथकड़ी ओरियेन्टेशन को हटाकर प्रशिक्षणार्थियों का तकनीकी ओरियेन्टेशन किया। आज हरियाणा में सारी पुलिस परीक्षाएं ऑनलाईन होती हैं, जिसका फायदा यह हुआ है कि परिक्षार्थियों में विश्वास बढ़ा है और चयन प्रक्रिया में पारदर्शिता आई है। हमने तीन बातों पर ज़ोर दिया है। पहला, तकनीक का उपयोग – मल्टिमीडिया का उपयोग करके भाषा का एक लैब बनवाया और वार्तालाप पर प्रशिक्षणार्थियों की ट्रेनिंग करवाई ताकि पुलिस कर्मियों

श्री वी.एन.राय

के बोलचाल में सकारात्मक बदलाव आए। वे लोगों से अच्छी तरह बातचीत करना सीखें। एक ऑडियो–विजुअल लैब भी बनवाया गया जिसका उपयोग वे अपने काम के दौरान अपराध स्थल पर फोटोग्राफी आदि में कर सकें।

दूसरा प्रयत्न, विचार शैली में बदलाव – एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया द्वारा हमने उनकी विचार शैली में परिवर्तन लाने की कोशिश की है। पुलिसकर्मी जिस भी विचार शैली से आते हों उसे हटाकर एक संवेदनशील विचार प्रक्रिया को स्थापित करने के लिए 'संवेदी पुलिस सशक्त समाज' की अवधारणा दी गई क्योंकि अगर समाज सशक्त होगा तभी पुलिस अच्छा काम कर पाएगी। इस काम के लिए एक विभाग बनाया गया है जहां प्रशिक्षणार्थियों का आम जनता से जुड़ाव किया जाता है। इस अवधारणा का उदाहरण हम कई उन्नत राज्यों की पुलिस व्यवस्था को देखकर कर सकते हैं जहां लोग अपने अधिकारों को साधारण प्रक्रिया के तहत उपयोग करने में समर्थ होते हैं तभी पुलिस अपना काम कुशलता से कर पाती है। इस लक्ष्य को पाने के लिए हम औपनिवेशिक पुलिस को जनतांत्रिक पुलिस में बदलने की कोशिश कर रहे हैं। आज की पुलिस आधिकारिक है उसे हम अधिकार संगत बना रहे हैं। पुलिसकर्मियों को आपसी व्यवहार में भी जनतांत्रिक तरीक़े सिखाये जा रहे हैं, ताकि वे आम जनता के साथ भी वैसा ही व्यवहार कर सकें। उन्हें यह बात विभिन्न प्रशिक्षणों द्वारा समझायी जा रही है कि हर वर्ग के कुछ अधिकार होते हैं और हम जो भी करें उससे उनके अधिकारों की सुरक्षा होनी चाहिए। इन सबके लिए बाहर से प्रशिक्षकों को भी बुलाया जाता है।

तीसरा, हमने वर्तमान पाठ्यक्रम को दोहराया और उसमें फोरेंसिक भाग का अनुपात बहुत हद तक बढ़ाया ताकि इससे थर्ड डीग्री के तरीकों से बाहर निकला जा सके। इसके लिए हमने एक 'इन्वेस्टीगेशन हब' बनाया है जहां पुलिसकर्मी पिछले केसों की फाईल लाकर पढ़ते हैं और उनके कमजोर एवं मजबूत पहलुओं पर चर्चा करके यह देखते हैं कि इस केस की जांच में निर्धारित मानक प्रक्रियाओं का प्रयोग किया गया है या नहीं। सम्मिलित लोगों के संवैधानिक तथा कानूनी अधिकारों का सम्मान हुआ है या नहीं।

पुलिस में प्रशिक्षण के बारे में एक कहावत है 'किले की बात और है ज़िले की बात और है' हमने इस बात को गलत साबित करते हुए 'संवेदी पुलिस–सशक्त समाज' की अवधारणा से यह बताया कि अच्छी पुलिस की कामना करना मुमकिन है। सबसे पहले पुलिस संगठन में एक–दूसरे के प्रति बर्ताव बदले जाएं। हमने इन्हें संवेदी बनाने के लिए सांस्कृतिक मूल्यों का उपयोग भी किया।

वर्तमान पाठ्यक्रम में क्या–क्या पढ़ाया जाता है? और प्रशिक्षण आमतौर पर कितने समय का होता है?

सिद्वान्त के स्तर पर मुख्यतः कानून पढ़ाया जाता है। जिसमें संविधान, भारतीय दंड संहिता, दंड प्रक्रिया संहिता, साक्ष्य अधिनियम, मानवाधिकार तथा स्थानीय एवं विशेष कानून और महिलाओं से सम्बंधित आपराधिक कानूनों को भी पढ़ाया जाता है।

हम दंड प्रक्रिया संहिता को संविधान से जोड़कर पढ़ाते हैं ताकि इसे लागू करते समय संवैधानिक हदों का ध्यान रखा जा सके।

प्रायोगिक स्तर पर इन्हें हथियारों का उपयोग और योग साधना सिखाया जाता है। इसके अलावा हमने दर्शन को महत्व दिया है ताकि वे अपने देश की धरोहर को समझें और सुरक्षा के लिए बेहतर काम करें। हम इनको दो तरफ दर्शन करवाते हैं एक, दिल्ली–मथूरा–आगरा और दो, पंजाब–वाघा बॉर्डर। इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी को अपनी ट्रेनिंग अवधि में 'एक सामने दिखते गुमशुदा बच्चे' को पहचानना होता है। इसके बाद एक फार्म भरकर आवश्यकता अनुसार सरकार की सारी योजनाओं का फायदा उस बच्चे को दिलवाना होता है।

"दूसरी तरह से योग्य बच्चों" के लिए भी एक स्कूल खोला गया है जहां अकादमी के प्रशिक्षक व प्रशिक्षणार्थी उन्हें खाली समय में पढ़ाते हैं। यह भी एक कोशिश है उनमें जिम्मेदारी एवं संवेदनशीलता उत्पन्न करने की।

हमने अपने प्रशिक्षण में एक मनोवैज्ञानिक स्पोर्ट का आयाम भी जोड़ा है, जिसके

(शेष पृष्ट ३ पर)

सभी संघ राज्यों के लिए 'एक' सुरक्षा आयोग

2006 के प्रकाश सिंह केस के अन्तर्गत सुप्रीम कोर्ट द्वारा पुलिस सुधार पर दिए गए निर्देशों का पालन करते हुए गृह मंत्रालय ने मार्च 2010 में सभी संघ राज्यों के लिए केवल एक सुरक्षा आयोग के गठन का ऐलान किया।

एक सुरक्षा आयोग सुनिश्चित करता है कि राजनैतिक कार्यकारिणी राज्य पुलिस को प्रभावित करने के लिए गैर ज़रूरी प्रभाव और दबाव न डाले और साथ ही मोटे तौर पर नीति दिशा निर्देश तैयार करे जिससे राज्य पुलिस बल हर हाल में कानून के दायरे में काम कर सके। यह पुलिस बल में काफी समय से देखी जा रही अवैध राजनैतिक हस्तक्षेप को रोकने की बात करता है। यह समुचे पुलिस के लिए नीति निर्धारित करता है जहां पुलिस प्रमुख को रोजमर्रा के पुलिस ऑपरेशन और आयोग के नीतियों के पालन का प्रबंध करना होता है।

सुप्रीम कोर्ट के अनुसार, सुरक्षा आयोग का नेतृत्व मुख्यमंत्री या गृहमंत्री आयोग के प्रमुख के रूप में करेंगे और राज्य का डी. जी.पी. एक सचिव पद पर होगा। दूसरे सदस्यों का चयन इस प्रकार किया जाये कि आयोग सरकार के नियंत्रण के बग़ैर काम कर सके। इन सदस्यों का चयन कौन और कैसे करेगा इसके बारे में भी सुप्रीम कोर्ट ने सरकार को दो विकल्प दिए थे। पहला, वह लोग जिनके बारे में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग सिफ़ारिश करे और दूसरा, वह लोग जिन्हें पुलिस सुधार पर नजर रखने वाली समितियां बतलाएं। अंत में कोर्ट ने यह भी कहा था कि सुरक्षा आयोग द्वारा दी गई सिफ़ारिशों को मानना सरकार के लिए ज़रूरी होगा। केन्द्र ने अपने मेमो में साफ कहा है कि यह सभी संघ राज्यों के लिए केवल एक ही सुरक्षा आयोग का गठन करेगा बजाय इसके कि हर एक संघ राज्य के लिए उसका अपना आयोग हो। यह समझना आवश्यक है कि सारे संघ राज्यों की पुलिस सम्बंधित कठिनाइयां एक दूसरे से अलग होंगी। दिल्ली जैसे महानगर के मुद्दे और कठिनाइयां, दमन और लक्षद्वीप जैसे स्थानों से बिल्कुल अलग होंगे। साथ ही इन सब जगहों के लिए पुलिस के काम–काज की नीतियां बनाना तथा कार्य प्रदर्शन सूचक की पहचान करना, जो कि आयोग का काम होगा, इसके लिए स्थानीय पुलिस मुद्दों की ठोस जानकारी होना और स्थानीय लोगों की कठिनाइयां और उनपर उनकी राय लेना अत्यंत आवश्यक होगा। जब सारे संघ राज्यों के पुलिस सम्बंधित मुद्दे और कठिनाईयां अलग हैं तो, वहां के लिए नीतियां, कार्य प्रदर्शन सूचक और नीति–दिशानिर्देश भी अलग ही होने चाहिए। इसलिए, सी.एच.आर.आई. पूरजोर तरीक़े से प्रत्येक संघ राज्य के लिए एक अलग सुरक्षा आयोग गठन किए जाने की मांग करता है। हर एक सुरक्षा आयोग में स्थानीय लोगों का साफ़ और बराबरी का प्रतिनिधित्व होना चाहिए ताकि एक ऐसी प्रक्रिया बन सके जिससे प्रत्येक योजना को बनाना, लागू करना, समीक्षा तथा मुल्यांकन ठीक ढंग से करके दूबारा आवश्यकता अनुसार नीतियां बनाई जा सके। क्योंकि अगर ऐसा नहीं होगा तो, प्रत्येक संघ राज्य के स्थानीय लोग ही होंगे जिन्हें एक अंजान लोगों वाली आयोग की अनावश्यक नीतियों का खामियाज़ा भुगतना पड़ेगा।

आयोग के द्वारा किये जाने वाले कार्य हैं:

1. कानून के अनुसार ऐसी नीति दिशा निर्देश तैयार करना जिससे सक्षम, असरदार, तत्पर और जिम्मेदार पुलिस प्रक्रिया को बढ़ावा मिले।
2. कार्य–प्रदर्शन सूचक की पहचान करना ताकि पुलिस सेवा का मुल्यांकन हो सके। यह सूचक होंगे:– जनसंतोष, ऑपरेशन में निपुणता, पीड़ितों की पुलिस जांच, जवाबदेही, जिम्मेदारी, उपलब्ध संसाधनों के उपयोग तथा मानवाधिकार मानकों के पालन से संतोष पाना । समूचे राज्य की पुलिस सेवा के कार्य तत्परता का संगठनात्मक रूप में पुनःनिरीक्षण और मुल्यांकन करना। साथ ही प्रत्येक जनपद का पुनःनिरीक्षण और मुल्यांकन उसके –1)वार्षिक योजना 2) निर्धारित कार्यप्रदर्शन सूचक और 3) उपलब्ध संसाधनो और पुलिस की अड़चनों के आधार पर करना।

गृह मंत्राालय के मेमो के अनुसार सुरक्षा आयोग के गठन का प्रारूप ऐसा हो: संघ गृहसचिव (प्रमुख), प्रमुख सचिव (दिल्ली), प्रमुख सचिव (अंडमान निकोबार द्वीप समूह), प्रमुख सचिव (पांडीचेरी), पुलिस कमिश्नर (दिल्ली), दूसरे संघ राज्यों के प्रतिनिधि, (मीटींग की आवश्यकता के अनुसार)। हांलाकि उपरोक्त नामांकित पदों के अलावा केवल एक स्थान रिक्त बचता है। इसके अलावा केन्द्र सरकार द्वारा मनोनित 5 स्वतंत्र सदस्य, संयुक्त सचिव (संघ राज्य) तथा गृह मंत्रालय(कनवीनर) भी शामिल होंगे।

सुप्रीम कोर्ट के अनुसार, सुरक्षा आयोग में गृह मंत्री, विरोधी दल के नेता, कार्यकारिणी के सदस्यों के अलावा न्यायिक विभाग के कम से कम एक सदस्य, पुलिस तथा स्वतंत्र सदस्यों को शामिल होना चाहिए। आयोग के सदस्यों में ऐसे लोगों को शामिल करना चाहिए जिनकी अलग–अलग क्षेत्र में कार्यनिपुणता, व्यवसायिक ज्ञान और अनुभव हो। तभी नागरिकों के हितों की सुरक्षा और इस आयोग के काम में वैधता सुनिश्चित हो सकेगी।

सबसे अहम बात यह है कि वर्तमान आयोग के गठन में सभी संघ राज्यों का प्रतिनिधित्व तक नहीं है। क्योंकि उनमें से किसी का भी स्थाई स्थान आयेाग में नहीं है। यह आयोग बहुत हद तक दिल्ली केन्द्रित और दिल्ली से जुड़े लोगों से भरा होगा। यहां तक कि बाकी के चार संघ राज्यों से प्रतिनिधित्व की आवश्यकता है कि नहीं इसका फ़ैसला भी दिल्ली से ही आयेगा। आगे, पुलिस से केवल एक प्रतिनिधित्व है, वह भी दिल्ली के पुलिस कमिश्नर का, जो कि अपराध से जूड़े तमाम मुद्दे जिनपर पुलिस के लिए नीति दिशा–निर्देश बनाए जाएंगे, उन्हें प्रभावित कर सकते हैं। राजधानी क्षेत्र के बाहर के पुलिस मुद्दों के प्रतिनिधित्व के लिए यह प्रारूप सही नहीं है और न ही इस आयोग में सारे संघ राज्यों का प्रतिनिधित्व है। अंत में, आयोग को प्रभावशील होने के लिए इसकी वापस सरकार और विधान सभा में सालाना रिपोर्ट के तौर पर जवाबदेही होनी चाहिए। इसकी सिफारिश और निर्देश सरकार के लिए बाध्यकारी होना चाहिए। मेमो में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है। यह साफ है कि पुलिस नीतियों पर जनता के गहरे असंतोष की मांग है कि एक नये ढंग से पुलिस नीतियां बनाई जाए जो जनता के समक्ष साफ़ हो, समीक्षा पारदर्शी हो और बुरे प्रचलन की जवाबदेही भी उतनी हो जितनी की कार्य प्रदर्शन में असफलता की हो। यह बात परेशान करने वाली है कि मेमो आयोग की शक्तियों पर खामोश है। इन दोनो बातों की अनुपस्थिति आयोग को एक कमजोर बॉडी का रूप देती है। जबकि इसके गठन का मकसद था एक मज़बूत और बोलने वाली बॉडी की स्थापना करना, जिससे पुलिस और जनता दोनों को लाभ हो सके।

निष्कर्षतः सी.एच.आर.आई. सिफारिश करती है कि सुरक्षा आयोग के गठन में न्यायपालिका के सदस्य को शामिल होना चाहिए और इस बात को सुनिश्चित करने की कोशिश होनी चाहिए कि सुरक्षा आयोग में नौकरशाहों का बोलबाला न हो और यह दूसरे क्षेत्र में निपुण लोगों के प्रतिनिधित्व के लिए खुला हो। इसके अलावा अदालत के निर्देशों को सही तौर पर मानते हुए किसी भी सुरक्षा आयोग के गठन में स्वतंत्र सदस्यों के चुनाव के बारे में उनके चयन का मकसद और चयन करने की प्रक्रिया को तैयार करने को प्राथमिकता देनी चाहिए, क्योंकि यही वह सदस्य होंगे जो आयोग में वैधता को स्थापित कर सकेंगे।

— नवाज़ कोतवाल

समलैंगिक विवाह – कुछ सवाल

पिछले दिनों दो पुरूषों कि शादी ने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया । इन दो पुरूषों ने तय किया कि वे एक दूसरे से इतना प्यार करते हैं कि आपस में शादी कर सकते हैं और उन्होंने ऐसा ही किया। इस प्रसन्नचित जोड़े की फोटो ने बहुत लोगों को आश्चर्यचकित किया होगा।

मुश्किल से दो दिन हुए कि एक दूसरा लेख छपा कि यह नया जोड़ा अब अलग हो चुका है। कारण कोई नया नहीं। मां–बाप ने हिंसात्मक रूप से विरोध किया तथा पुलिस में शिकायत कर दी, पुलिस ने दोनों को समझाया और दोनों ने तय किया कि उन्हें अलग हो जाना चाहिए।

कई परिवार अपने झगड़े सुलझाने पुलिस के पास चले जाते हैं। वास्तव में, पुलिस केवल परामर्श दे सकती है पर किसी बात के लिए दबाव नहीं डाल सकती। यह पुलिस के काम का हिस्सा नहीं है,उन्हें ऐसा करने की ज़रूरत केवल तब होती है जब मामले में आगे चलकर अपराध होने की सम्भावना हो। लेकिन यहां ऐसी बात नहीं थी फिर भी पुलिस ने दख़ल दिया जबकि अधिक से अधिक उन्हें दोनों परिवारों को इस चेतावनी के साथ कि वह किसी भी प्रकार का ग़ैरकानूनी काम न करें, किसी पारिवारिक सलाहकार के पास भेज देना चाहिए था और इस जोड़े को भी यह बता देना चाहिए था कि क्योंकि वे व्यस्क हैं इसलिए किसी के साथ भी रहने के लिए उन्हें अपने माता पिता की आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं है, कोई भी उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के उपयोग में बाधा नहीं डाल सकता है। साथ ही, अगर कोई उन्हें धमकी दे तो वे उनके खिलाफ थाने में शिकायत दर्ज करा सकते हैं।

जिन परिवारों में आपसी रंजिश हो उन्हें समझाना कठिन होता है, ऐसे हालात में लोगों को शांत कराने का एक उपाय उन्हें कानूनी दायरों से अवगत कराना है। इस केस में दो व्यस्क लोग थे और उन्हें अपनी पसन्द से शादी करने की आज़ादी है, इसके लिए मां–बाप से आज्ञा लेने कि आवश्यकता भी नहीं। उनका समलैंगिक होना संविधान और कानून द्वारा दिए गए अधिकारों से उन्हें वंचित नहीं कर सकता। यह सच है कि समाज में ऐसे मामले आसानी से स्वीकार नहीं किया जाते इसी लिए ऐसे हालात में पुलिस की ज़िम्मेदारी और बढ़ जाती है। कानून का रक्षक होने के नाते उन्हें इस बात का ध्यान रखना होगा कि दो लागों की जीवनशैली को नकारते हुए समाज का कोई व्यक्ति उन्हें चोट न पहुंचाए और न उनके किसी अधिकारों को छीने, जो कानून ने उन्हें दिए हैं। दिल्ली उच्च न्यायालय ने जुलाई 2009 में समलैंगिकता के विषय में एक निर्णय में कहा है कि, ''भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 संविधान के अनुच्छेद 21, 14 और 15 का उल्लंघन करती है क्योंकि यह दो व्यस्क व्यक्तियों द्वारा सहमति से एकांत में किये जा रहे उन यौन कार्यों को आपराधिक मानती है जहां पुरूष जननांग द्वारा स्त्री की योनि से परे कोई यौन कार्य किया जाए। धारा 377 के अन्तर्गत एक पुरूष और स्त्री की योनी के परे किया गया यौन कार्य केवल तभी अपराध होगा जब यह किसी अवयस्क व्यक्ति से या फिर असहमति से किया जा रहा हो।'' लेकिन यहां ऐसी स्थिति नहीं थी फिर भी इन दो लोगों को इसलिए अलग होना पड़ा क्योंकि उन पर दबाव डाला गया।

कभी–कभी पूरी तरह निष्पक्ष हो पाना पुलिस के लिए कठिन हो सकता है क्योंकि जो अधिकारी इस मामले को देख रहे होते हैं उनका अपना मत भी होता है लेकिन एक पुलिस अधिकारी होने के नाते उन्हें हर हाल में निष्पक्ष और साफ़ होना आवश्यक है और इस बात का ध्यान रखना भी ज़रूरी है कि वह अपनी शक्तियों के इस्तेमाल से हालात को किसी एक के पक्ष और दूसरे के खिलाफ़ न कर दें और यह सुनिश्चित करें की हर हाल में कानून का पालन हो न कि उन रीति रिवाजों का बोलबाला हो जाए जिसमें स्वंय उसकी परवरिश हुई हो।

आप भी अपनी बात कहें–

पुलिसकर्मियों को दोनों पार्टीयों से क्या कहना चाहिए था ताकि दोनों के हितों को सुरक्षित रखा जा सके?

क्या पुलिस को हस्तक्षेप करना चाहिए था, आप क्या सोचते हैं?

उन्हें इस जोड़े या उनके माँ–बाप से क्या कहना चाहिए था?

क्या उन्हें इस परिवार को किसी समाज–सेवक के पास भेज देना चाहिए था?

क्या उन्हें एफ.आई.आर. दर्ज करनी चाहिए था?

– माया दारूवाला

...पृष्ट १ का शेष

लिए एक अलग विंग बनाया गया है। अकादमी में आने वाले प्रशिक्षणार्थीयों का मनोवैज्ञानिक प्रोफाईल तैयार किया जाता है और आवश्यकता अनुसार उन्हें सलाह दी जाती है।

क्या आपके विचार में सरकार प्रशिक्षण के बारे में गंभीर है? एक पुलिसकर्मी के प्रशिक्षण पर कितना खर्च हाता है?

सरकारों को ट्रेनिंग संरचना को मजबूत करना चाहिए, जैसे हमने जो कम्प्यूटर–हब बनाया वह सरकार के कारण ही सम्भव हो पाया है। ट्रेनिंग के लिए सरकारें फन्ड देती हैं। हरियाणा के लिए केन्द्र गृह राज्य ने 5 साल में 100 करोड़ रूपये दिए हैं। एक पुलिसकर्मी के प्रशिक्षण पर कितना खर्च होता है इसका कोई आंकड़ा नहीं निकाला गया है।

बहुत सारे पुलिस अफसरों के विचार में अकादमी में तबादला होना एक सजा जैसा है। क्या आप इससे सहमत हैं?

मैं इससे बिल्कुल सहमत नहीं हूँ। इससे अच्छी ईकाई क्या हो सकती है अगर आप काम करना चाहते हैं, आपको एक पूरे नए ग्रुप के मार्गदर्शन का अवसर मिलता है। जो ऐसा कहते हैं वह इसलिए क्योंकि बेईमानी और पैसे खाने का अवसर नहीं मिलता।

आपकी संक्षिप्त सलाह प्रशिक्षण की बेहतरी के लिए?

पाठ्यक्रम में तकनीक और फोरेंसिक जांच को अधिक अनुपात में जोड़ना चाहिए।

आप भी अपने विचार हमसे बांटें और हम उन्हें सही जगह पहुंचाएंगें:

✍ क्या आपके विचार में, जो प्रशिक्षण आपको दिया जाता है वह आपको नौकरी के लिए तैयार करता है?

✍ क्या आपको कोई कमी दिखती है?

✍ क्या सुधार करने की ज़रूरत है?

पुलिस द्वारा भीड़ नियंत्रण

भारत में ही नहीं बल्कि दूसरे देशों में भी पुलिस की सबसे अहम ज़िम्मेदारी जनता के हितों की रक्षा करना है। पिछले साल लन्दन में हुए एक कान्फ्रेंस के विरोध प्रदर्शन में पुलिस और प्रदर्शनकारियों के बीच मुठभेड़ में ऑफिस से घर लौटते हुए एक आम व्यक्ति की जान चली गई। तभी से मृत व्यक्ति के परिवार वाले दोषी पुलिसकर्मी के खिलाफ़ हत्या का मामला चलाने की मांग कर रहे हैं।

सरकारी पक्ष ने तुरंत कार्यवाही का वायदा भी किया, लेकिन एक साल के बाद भी परिवार की मांग पूरी नहीं हुई है। हांलाकि नीतियों के स्तर पर काफ़ी हलचल हुई है। अभियोजन पक्ष, 'स्वतंत्र पुलिस शिकायत आयोग' (आई.पी.सी.सी.) जिसने इस घटना की प्रारम्भिक जांच की थी, के द्वारा इस केस से जुड़े और सबूतों का इंतज़ार हो रहा है।

इन सबके बीच 'मुख्य अधिकारियों की समिति' विरोध प्रदर्शन के दौरान पुलिस के कर्तव्यों से सम्बन्धित एक 'नियम–पुस्तिका' जारी कर रही है। सांसदों ने भी पुलिस दुारा बल प्रयोग पर एक व्यवहार–संहिता पेश की है। दोनों ही दस्तावेज़ पुलिस बल में किये जाने वाले अहम बदलाव की बात करते हैं, लेकिन पीड़ित परिवार को तो 'न्याय' चाहिए था जो शायद ही ऐसे केसों में कभी मिल पाता है। हाँ, इन सुधार नीतियों से भविष्य में ऐसे हादसे न हों इसकी अपेक्षा की जा सकती है।

क्या आप जानते हैं कि भारत में भी उग्र विरोध प्रदर्शन के समय बल प्रयोग के लिए पुलिस, कुछ निर्धारित दिशा–निर्देशों को मानने के लिए बाध्य है, जो ये हैं:

शांतिपुर्ण तरीके से विरोध प्रदर्शन का हक हमारे मौलिक अधिकार में निहित है।

संविधान के 19वें अनुच्छेद में हमें कुछ प्रतिबंधों के साथ बिना हथियारों के विरोध प्रदर्शन करने की गारंटी दी गई है।

पुलिस का कर्तव्य है कि नागरिकों के मिटींग करने के अधिकार के पालन को सहज बनाने में उनकी मदद करे।

जन रैली में हमेशा ही भीड़ बेकाबू होने की सम्भावना होती है लेकिन ऐसे हालात में भीड़ पर बल प्रयोग नियंत्रित होना चाहिए और उसका स्पष्ट विवरण होना चाहिए।

बलप्रयोग केवल तभी करना चाहिए जब बेहद आवश्यक हो।

बलप्रयोग कम से कम और परिस्थिति की आवश्यकता के अनुसार ही होना चाहिए। और जैसे ही इससे जनजीवन और सम्पत्ती को ख़तरा हो, इसे रोक देना चाहिए।

हर हाल में परिस्थिति के अनुसार कम से कम बलप्रयोग किया जाना चाहिए।

केवल एक निर्वाहक मजिस्ट्रेट या थाना प्रभारी ही बलप्रयोग का आदेश दे सकता है।

थाना प्रभारी की अनुपस्थिति में भी एक सब इंसपेक्टर से नीचे दर्जे का अधिकारी बलप्रयोग का आदेश नहीं दे सकता है।

बलप्रयोग तथा इसके प्रकार का फ़ैसला साधारणतः निर्वाहक मजिस्ट्रेट का होगा।

मजिस्ट्रेट से बलप्रयोग का आदेश मिलने पर किस हद तक बलप्रयोग किया जाना है इसका फैसला मुख्य पुलिस अधिकारी का होगा।

बलप्रयोग प्रगतिशील होगा – अर्थात् बन्दूक का इस्तेमाल तब होगा जब आंसू गैस और लाठी चार्ज से भीड़ नहीं हटाई जा सके।

भीड़ नियंत्रण की शुरूआत साधारणतः आंसू गैस से होनी चाहिए।

अगर भीड़ बड़ी है और आंसू गैस का इस्तेमाल बेअसर है तो, पुलिस लाठी चार्ज कर सकती है।

लाठी चार्ज केवल तब शुरू किया जा सकता है जब उचित चेतावनी के बावजूद भीड़ हटने से इंकार कर दे।

लाठी चार्ज करने की स्पष्ट चेतावनी बिगुल द्वारा भीड़ को समझ आने वाली भाषा में दी जानी चाहिए। अगर जिम्मेदार पुलिस अधिकारी इस बात से संतुष्ट है कि चेतावनी का कोई लाभ नही, तो बिना चेतावनी के भी लाठी चार्ज करने का आदेश दे सकता है।

लाठी चार्ज तब तक जारी रहना चाहिए जबतक भीड़ हट न जाए।

अगर भीड़ हटाने में सफल नहीं होते तो मजिस्ट्रेट, थाना प्रभारी या उसकी अनुपस्थिति में सब इंसपेक्टर या उससे उँचे स्तर का अधिकारी फायरिंग का आदेश दे सकता है।

भीड़ को फायरिंग शुरू करने की जानकारी और चेतावनी साफ़ तौर पर दी जानी चाहिए।

अगर भीड़ नहीं हटती तो फायरिंग शुरू कर देना चाहिए।

अगर भीड़ हटती दिखे तो फायरिंग बंद कर देनी चाहिए।

ज़ख्मी लोगों को अस्पताल ले जाना चाहिए।

पुलिस दुारा सारे हालात की ठीक ठीक डायरी बनाई जानी चाहिए, जिसमें फायरिंग में शामिल होने वाले सभी अधिकारियों की व्यक्तिगत रिपोर्ट होगी।

क्या आपके विचार में यह दिशा–निदेश अनुचित है?

हमें लिखें और अपने विचारों से अवगत करायें।

— नवाज़ कोतवाल

आपका मत और अनुभव

हमारी सहकर्मी ने जब हरियाणा के थानों का पता पूछने के लिए थानों में फोन किया (जिनके नाम गुप्त रखने का निवेदन किया गया है) तो उनके कुछ अनुभवः

दो थानों की मुख्य फोन लाईन बंद मिलने पर ए.सी.पी. ऑफिस से इन थानों के किसी कांस्टेबल का मोबाईल नम्बर लेकर उस पर बात करने पर पता चला कि दो सप्ताह से फोन बंद है। फोन लाईन का खराब पड़े रहना आम बात है, मेकैनिक बुलाने पर आता नहीं है और न इस बात को कोई गंभीर रूप से लेता है।

एक कांस्टेबल ने हास्यास्पद तरीके से कहा 'आपसे अच्छी तरह बात कर रहे हैं, यही पुलिस सुधार है। पुलिस सुधार हो चुका है।'

एक पुलिसकर्मी ने अपनी व्यथा बताते हुए कहा कि हरियाणा में पुलिसकर्मियों की बहाली उनके अपने ज़िले में नहीं होती, जिस कारण उनके परिवारों की देखभाल पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

एक दूसरे पुलिसकर्मी ने बताया कि कार्य–अवधि कभी तय नहीं होती। आमतौर से हर पुलिसकर्मी को कम से कम 15 घंटे लगातार काम करना पड़ता है।

यहां यह बताना आवश्यक है कि दो थानों में फोन लाईनें उस समय बंद पड़ी थीं जब दिल्ली में सुरक्षा कारणों से हाई अलर्ट था। उपरोक्त अनुभव हरियाणा के थानों के हैं, लेकिन क्या ऐसी कुव्यवस्था केवल हरियाणा में ही है?

आप भी अपने थाने की कमियों को उजागर करें और हमें लिखें। हम आपकी बात छाप कर वहां कि समस्याओं पर उचित अधिकारियों का ध्यान दिलवाएंगे।

एफ. आई. आर. 'शिकायत' या मुसीबत?

आज से लगभग दो साल पहले, रोहतक की रहने वाली सरिता ने हरियाण पुलिस चीफ (ADGP) के कार्यालय के बाहर आत्महत्या कर ली थी। कारण बार–बार कोशिश करने के बाद भी वह अपने साथ हुए बालात्कार की एफ. आई. आर. दर्ज करवाने में नाकामियाब रहीं। इसका मुख्य कारण पुलिस की लापरवाही और रिर्पोट दर्ज न करना था। आज इस घटना के दो साल बाद कुरुकक्षेत्र की रहने वाली दर्शना देवी की जहर खा कर आत्महत्या करने कि कोशिश हमें यही याद दिलाती है कि समय के साथ कुछ नहीं बदला और हमारी पुलिस व्यवस्था में आज भी एक अपराध की रिर्पोट दर्ज करवाना किसी मुसीबत से कम नहीं है। यह तो इन दो दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं से ही व्यक्त हो जाता है की जान देना, अपराध की एफ. आई. आर. दर्ज करवाने से आसान है।

यह स्थिति और भी दुर्भाग्यपूर्ण है क्योंकि कई उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायाल के साफ निर्देशों के बावजूद हम इस स्थिति से झुलस रहे हैं।

कुछ विभिन्न केसों में अदालतों ने निम्नलिखित बातें इस मुददे पर कही हैं जैसे कि हरियाणा राज्य तथा अन्य बनाम भजनलाल के केस में न्यायालय ने यह स्पष्ट रुप से कहा था कि अपराध के रजिस्ट्रेशन की अवस्था पर या फिर किसी संज्ञेय अपराध की जानकारी मिलने पर भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 (क) की अनिवार्यता के पूरा होते ही सम्बंधित पुलिस अधिकारी इस जानकारी की विश्वसनीयता व सच्चाई की जांच शुरू नहीं कर सकता और न इस आधार पर कि जानकारी विश्वास के लायक नहीं है, केस दर्ज करने से मना कर सकता है। दूसरी ओर, इस कानून की धारा 156 तथा 157 के प्रतिबंध के अनुसार एक थाना प्रभारी कानूनी तौर पर एक केस को दर्ज करने के बाद या अपराध के शक होने पर जांच करने के लिए बाध्य है।

इससे ही मिलते जुलते विचार केरल उच्च न्यायालय ने बालाचन्द्रन बनाम केरल राज्य में व्यक्त करते हुए, यह कहा है कि : दण्ड प्रक्रिया संहिता का खण्ड 12 यह स्थापित करता है कि हालांकि एक थाना प्रभारी किसी संज्ञेय अपराध की जानकारी मिलने पर धारा 154 (क) के तहत केस दर्ज करने के लिए बाध्य है, वहीं धारा 157 (क) के प्रतिबंध का खंड (ख) उसे यह अधिकार देता है कि अगर उसे ऐसा प्रतीत हो कि जांच शुरू करने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है तो वह केस की जांच नहीं भी कर सकता है। पर धारा 157 की उपधारा (ख) आगे यह भी अपेक्षा करती है कि अगर थाना प्रभारी को लगता है कि जांच शुरू करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह अपनी रिपोर्ट में इसका कारण (धारा 157 की उपधारा (ख) को न मानने का कारण) स्पष्ट करने के लिए बाध्य है और उसी समय सूचना देनेवाले को भी इस बात से अवगत कराना होगा कि जांच शुरू नहीं की जा रही है।

पंजाब उच्च न्यायाल ने भी इस दृष्टिकोण को सही मानते हुए, गुरमीत बना पंजाब राज्य के केस में, यह कहा है कि धारा 157 एवं 157 को एक साथ पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि जब एक संज्ञेय अपराध की जानकारी थाना प्रभारी को मिलती है तो, वह कर्तव्य से बाध्य है कि उसे एक प्रथम सूचना पत्र (एफ.आई.आर.) की शक्ल में एक निर्धारित किताब में रिकार्ड करे जो इसी मकसद के लिए रखी जाती है। इस चरण पर उसे ऐसी कोई शक्ति प्राप्त नहीं है कि वह यह कह सके कि जो जानकारी उसे मिली है वह विश्वास करने योग्य नहीं है, इसलिए वह एफ.आई. आर. दर्ज नहीं करेगा। केवल एफ.आई.आर. दर्ज होने के बाद ही वह यह निर्णय कर सकता है कि धारा 157 के तहत जांच करने के लिए पर्याप्त आधार है कि नहीं। यदि संबंधित अधिकारी को यह प्रतीत होता है कि इस केस में जांच करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है तो वह इस बात को मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट करेगा और उसी समय इसकी सूचना, जानकारी देने वाले को इस ढंग से करेगा जैसे राज्य सरकार ने बताया हो। इसलिए एफ.आई.आर. दर्ज करने के लिए जो अनिवार्य शर्त है वह है एक संज्ञेय अपराध की जानकारी मिलना।

उपरोक्त चर्चा से जो कानूनी व्यवस्था दिखती है वह यह है कि एक संज्ञेय उपराध की जानकारी थाना प्रभारी को मिलती है तो यह धारा 154 (क) की आवश्यकता को पूरा कर देती है।

इस आधार पर की जानकारी विश्वसनीय नहीं है, केस दर्ज करने से मना नहीं किया जा सकता। ऐसा करना अपने आप में एक अपराध है।, जिसकी शिकायत करने पे संबंधित पुलिस अधिकारी पे कानूनी कार्यवाही की जा सकती है। तथा उसे निलमबित भी किया जा सकता है।

दूसरी ओर, वह इस जानकारी के मूल तथ्यों को एक निर्धारित रुप से लिखने और इस आधार पर एफ. आई.आर दर्ज करने के लिए बाध्य है। धारा के 154 के तहत केस दर्ज करने के बाद ही थाना प्रभारी को यह विकल्प प्राप्त होता है कि वह दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 157 के तहत जॉच प्रारम्भ करेगा या नहीं।

इसी धारणा को मान्य रखते हुए न्यायालय सतीश कुमार गोयल बनाम दिल्ली राज्य के केस में कहा है कि पुलिस किसी संज्ञेय अपराध की जानकारी के आधार पर एफ. आई.आर. दर्ज करने के लिए वैधानिक रूप से बाध्य है। विद्वान वकील ने दावा किया कि इस संहिता की धारा 154 (क) पुलिस के लिए एफ.आई.आर. दर्ज करने को पूरी तरह से अनिवार्य बनाता है, जहां शिकायत से किसी संज्ञेय अपराध के होने की जानकारी मिले। उनके अनुसार 154 (क) थाना प्रभारी को कोई अधिकार नहीं देता और वैधानिक तौर पर एफ.आई.आर. दर्ज करने के लिए वह कर्तव्य–बाध्य होता है।

गोहाटी उच्च न्यायाल ने भी नवीन चंद मजिथिया बनाम मेघालय राज्य के केस में यही कहा है कि अगर संज्ञेय अपराध है तो जिस थाना प्रभारी को मौखिक रूप में यह जानकारी दी गई है उसका वैधानिक कर्तव्य है कि वह उसे लिखकर उसपर जानकारी देने वाले का हस्ताक्षर भी ले। सूचना के सार को चाहे वह लिखित रूप में दिया जाए या बाद में लिखा जाए, सरकार द्वारा इस काम के लिए निर्धारित एक किताब में दर्ज करे। थाना प्रभारी का इस काम से कोई बचाव नहीं है, अगर अपराध संज्ञेय है तो, फिर चाहे वह अपराध उस थाना क्षेत्र के अन्दर किया गया हो या नहीं।

इन सारे आदेशों के बावजूद एफ. आई.आर. क्यों नहीं दर्ज होती है। पुलिस अधिकारी क्यों ज्यादातर मामलों में अपराध दर्ज करने से इन्कार कर देते हैं ?

कुछ कारणों से हम वाकिफ हैं। लेकिन हम आप की राय जानना चाहते हैं। हमें लिखें और बताएं कि एफ. आई. आर. दर्ज करने में आप क्या कठिनाईयों का सामना करते हैं ? आपके विचार हमारे लिए जरुरी हैं। इन ही विचारों से परिस्थिति बदल सकती है।

लोक पुलिस और आप

पुलिस के बारे में बहुत खबरें छपती हैं। अगर अखबार उठाकर देखें तो जरूर कोई न कोई खबर मिलेगी जिसमें पुलिस की भूमिका पर सवाल उठाए होंगे।

पुलिस को अपनी बात कहने का कभी मौका नहीं मिलता। अगर मिलता भी है तो यह केवल 10 प्रतिशत ऊपर के अधिकारियों तक सीमित है। वह भी शायद अपनी बात सेवा निवृति के बाद ही कह पाते हैं। इसका पुलिस सुधार या कामकाज पर कितना असर होता है यह शोध का विषय हो सकता है। भारत में लगभग 14 लाख पुलिस कर्मचारी हैं इसमें लगभग 88% वे हैं जिन्हें कांस्टेबुलरी कहा जा सकता है यानि असिस्टेंट सब इंस्पेक्टर से नीचे दर्जे के कर्मचारी। अगर देखा जाए तो कांस्टेबुलरी पुलिस कामकाज की रीढ़ की हड्डी है यही वह लोग हैं जिन पर पुलिस व्यवस्था की नींव टिकी है।

आप जो पुलिस विभाग में 24 घंटे काम करते हैं, आप क्या सोचते हैं पुलिस व्यवस्था में कहां और कैसे सुधार की जरूरत है? पुलिस कैसी होनी चाहिए आप किस तरह की पुलिस का हिस्सा बनना चाहेंगे?

लोक पुलिस एक कोशिश है आपकी बात लोगों व विभाग के अधिकारियों तक पहुंचाने का। आप अपनी राय या सुझाव नाम सहित या अज्ञात निम्नलिखित पते पर भेज सकते हैं:

प्रधान संपादकः ज़ीनत मलिक
लोक पुलिस, बी–117, सैकंड फ्लोर, सर्वोदय एन्कलेव, नई दिल्ली–110017

दिल्ली का नया पुलिस कानून

उच्चतम न्यायालय के निर्देश के लगभग 4 वर्ष बाद दिल्ली सरकार ने दिल्ली के उपराज्यपाल एवं केन्द्र सरकार के माध्यम से पुलिस कानून में सुधार की कुछ प्रक्रिया प्रारंभ की है। परंतु जो कुछ उसने किया है उससे ऐसा बिल्कुल नहीं लगता कि दिल्ली की कानून व्यवस्था में कोई सुधार होगा अथवा दिल्ली किसी भी प्रकार अधिक सुरक्षित हो पाएगी।

दिल्ली सरकार एक व्यापक नया पुलिस कानून लाने के स्थान पर दिल्ली पुलिस (संशोधन) विधेयक, 2010 का मसौदा लेकर आई है। ऐसा उच्चतम न्यायालय के निर्देशों एवं गृहमंत्री के उन बयानों के दबाव में किया गया है जिनमें गृहमंत्री ने पुलिस कानूनों में सुधार के प्रति अपनी सरकार की वचनबद्धता को दोहराया है। परंतु अगर इस मसौदे को पढ़ा जाए तो इस वचनबद्धता के खोखलेपन का अहसास हो जाता है। इस कानून में उच्चतम न्यायालय ने जिन संस्थाओं का नाम लिया है उन संस्थाओं के नाम तो इसमें बनाए रखे गये हैं, परंतु उनकी आत्मा को मार दिया गया है। यदि इसी कानून को पास कर दिया गया तो निश्चित है कि दिल्ली की कानून व्यवस्था में कोई सुधार नहीं होगा और दिल्ली के नागरिक गैरपेशेवर, अकुशल तथा गैरजवाबदेह पुलिस व्यवस्था के नीचे पिसते रहेंगे।

उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के अनुसार प्रत्येक पुलिस बल को एक 'पुलिस शिकायत प्राधिकरण' की स्थापना करने को कहा गया है, जो यह देखेगा पुलिस के विरूद्ध साधारण और गंभीर शिकायतों का पुलिस किस तरह निर्वाह करती है। साथ ही इसके लिए सिफारिश भी करेगी। इसकी आवश्यकता इसलिए है क्योंकि वर्तमान आन्तरिक प्रक्रिया धीमी, अनिश्चित और अपारदर्शी है और लोगों का इसमें विश्वास नहीं है। उच्चतम न्यायालय के अनिवार्य निर्देशों के बावजूद, संशोधन विधेयक ऐसे किसी भी तंत्र के स्थापना की बात नहीं करता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि दिल्ली के लिए इस प्रकार का प्राधिकरण गृह मंत्रालय कार्यालय ज्ञापन दुारा स्थापित किया जा चुका है।

फिर भी, हम इस बात से चिन्तित हैं कि दिल्ली के लिए 'पुलिस शिकायत एजेंसी' का प्रारूप न तो उच्चतम न्यायालय के निर्देशों को पूरा करता है और न ही मॉडल पुलिस बिल के मसौदे को क्योंकि यह स्वतंत्र बॉडी की तरह काम कर पाने में असमर्थ होगा। इस प्रस्तावित रचना में, गठन के ढ़ंग तथा अधिकारों के स्वरूप में स्थायी कमज़ोरियां हैं।

उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के अनुसार प्रत्येक राज्य को एक राज्य सुरक्षा आयोग भी स्थापित करने को कहा गया है। यह पुलिस और राजनैतिक कार्यकारिणी के बीच प्रतिरोधक का काम करेगा। ऐसी एक बॉडी की स्थापना, पुलिस परिचालन तथा सुंस्थापन में अवैधानिक बाहरी प्रभाव और हस्तक्षेप की पुरानी कठिनाईयों को देखते हुए अनावश्यक नहीं माना जा सकता। एक सुरक्षा आयोग विशेष रूप से संपुर्ण पुलिस बल का नीति निर्धारण करेगा और पुलिस प्रमुख का काम होगा रोजाना की सेवाओं के परिचालन का इंतजाम करना तथा आयोग की नीतियों को लागु और नीति–निर्देशन के लक्ष्यों को पूरा करना।

इस प्रकार के सुरक्षा आयोग की स्थापना गृह राज्य मंत्रालय के कार्यालय ज्ञापन दुारा किया गया है। इसके अन्तर्गत सभी संघ राज्यों के लिए एक मात्र सुरक्षा आयोग स्थापित किया गया है। विधेयक के मसौदे में सुरक्षा आयोग का कहीं उल्लेख नहीं है जिसका मतलब है कि दिल्ली का अपना एक अलग आयोग नहीं बनाया जाएगा। यह आयोग उच्चतम न्यायलय के गठन, स्वतंत्र सदस्यों के चुनाव तथा रिपोर्ट सम्बन्धी अनिवार्य निर्देशों को भी पूरा नहीं करता है।

उम्मीद थी कि इस बिल के ज़रिये आम पुलिसकर्मियों की कार्य–अवस्था तथा प्रशिक्षण सुविधाओं में कुछ गुणात्मक सुधार आएगा। लेकिन वर्तमान बिल में ऐसा कुछ नहीं है जिससे उन्हें कोई फ़ायदा हो सके। उनके ट्रांसफर, प्रमोशन, छुट्टी व काम के दौरान प्रशिक्षण में बेहतरी का आने वाले कानून में कोई प्रावधान नहीं है। सरकारों को यह समझना चाहिए कि जब तक निम्न स्तर के पूलिसकर्मियों की कार्य–अवस्था में सुधार नहीं लाया जाएगा, तब तक एक स्वच्छ, कुशल व जनमित्र पुलिसकर्मी की आशा करना एक सपना ही रहेगा।

– पुष्कर राज

क्या आप जानते हैं, पुलिस पर वार्षिक खर्चा कितना होता है?

राज्य पुलिस बलों पर व्यय में प्रतिवर्ष बढ़ोतरी हो रही है। 1990–91 से 2000–2001 के दस वर्षों की अवधि के दौरान विभिन्न राज्यों में पुलिस बलों पर किए गए व्यय में लगभग 280.06 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। विभिन्न वर्षों के दौरान किए गए वास्तविक व्यय की जानकारी निम्नलिखित तालिका में दी गई है :

वर्ष	राज्यों में पुलिस पर व्यय (करोड़ रुपए में)
1990 – 91	4045.8
1991 – 92	4543.66
1992 – 93	उपलब्ध नहीं
1993 – 94	6098.79
1994 – 95	6766.27
1995 – 96	7198.00
1996 – 97	7711.15
1997 – 98	9899.20
1998 – 99	12511.73
1999 – 00	14,922.22
2000 – 01	15,538.47
2001 – 02	16,004.06
2002 – 03	उपलब्ध नहीं
2003 – 04	उपलब्ध नहीं
2004 – 05	19,916.00
2005 – 06	21,070.00

यद्यपि पुलिस परिव्यय में काफी वृद्धि हुई है कुल सरकारी बजट के अनुपात के सदंर्भ में इसमें गिरावट आई है।

(सौजन्यः पुलिस अनुसंधान और विकास ब्यूरो द्वारा प्रकाशित विभिन्न वर्षों के

पुलिस के खिलाफ़ 3.7 लाख से ज्यादा मानव अधिकार उल्लंघन केस

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग(एन.एच.आर.सी.) को पिछले 10 सालों में पुलिस बल द्वारा मानव अधिकार उल्लंघन की तकरीबन 370,000 शिकायतें मिली हैं, जिनमें सबसे ज्यादा उत्तर प्रदेश से है। यह जानकारी एक अधिकार संगत बॉडी के दस्तावेज़ में दिया गया है।

इस दस्तावेज़ के अनुसार, जो एन.एच.आर.सी. तथा इन्डो एशियन न्युज़ सर्विस (आई.ए.एन.एस.)को पेश किया गया, एन.एच.आर.सी. में 377, 216 शिकायतें दर्ज करवाई गई हैं। आई.ए.एन.एस. को आयोग के अधिकारी ने बताया कि इसने 31 मार्च 2010 तक सबसे ज्यादा शिकायतें पुलिस के खिलाफ़ दर्ज की हैं। नौकरी से जुड़े केसों की संख्या भी अधिक है। उसके अनुसार,पुलिस के खिलाफ़ शिकायतों में ताकत का मनमाना इस्तेमाल,अपहरण,बलात्कार, हिरासत में मार–पीट तथा मौत, झुठे मुठभेड़ के केस और गैर कानुनी तौर से कैद के केस शामिल हैं। आयोग में पुलिस के ख़िलाफ कुछ दूसरी तरह के केस भी दर्ज हैं जैसे–पुलिस फायरिंग में मौत, झुठे केसों में फंसाना, (शेष पृष्ट ७ पर)

अपराध हल करने का सीधा तरीका - गिरफ्तारी, गुनाह कबूली और फिर छुट्टी

लखनऊ पुलिस के पास अपराधों को हल करने का एक सीधा रास्ता हैः कुछ लोगों की गिरफ्तारी करो, फिर यह दिखाओ कि वह अपना जुर्म कबूल कर चुके हैं और अपनी इस कामयाबी पर कि मुलजिम ने गुनाह कबूल कर लिया है खुद को शाबाशी दो और फिर यह कहो कि पुलिस मामलों को जल्दी सुलझाने में कामयाब है।

पिछले कुछ महीनों से कई केसों में लखनऊ पुलिस ने यही तरीका अपनाया हुआ है। हांलाकि ये सोचा समझा तरीका एक मनगढ़ंत कहानी से ज्यादा कुछ साबित नहीं हुआ। पुलिस की वाहवाही लूटने के इस तरीके की वजह से पिछले 1 साल में तकरीबन 15 लोगों को छोड़ना पड़ा और पुलिस ने कोर्ट में अर्जी डाली कि उन अपराधियों के खिलाफ वह सबूत जूटाने में नाकाम रही है इसलिए उन्हें छोड़ दिया जाए। जबकि इन आरोपियों को हत्या, हत्या की कोशिश और मादक दवाओं से सम्बन्धित कानूनों के अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया था।

पहले गिरफ्तारी और फिर रिहाई

के काम में हजरतगंज थाना 10 आरोपियों को छोड़कर न. 1 पर है, वहीं तालकटोरा थाना ने 3 लोगों को और अशियाना पुलिस ने 1 की रिहाई करवाई है। हाल ही में गोमती नगर पुलिस ने भी अदालत में 3 लोगों को रिहा करने के लिए अर्जी डाल रखी है, जिन्हें पहले पुलिस ने दिन–दहाड़े हत्या और डकैती करने के आरोप में गिरफ्तार किया था। यह केस श्री दयाल रस्तोगी नामक एक व्यापारी की हत्या का है, जब वो हजरतगंज स्थित एक बैंक में तकरीबन 8.4 लाख रूपये जमा करने जा रहे थे। अपराधी हत्या करके पैसेवाला बैग लेकर भाग गये थे। कुछ दिनों बाद, पुलिस ने अमित गुप्ता और नीशु नामक दो व्यक्तियों को कानपुर से तथा लक्ष्मण नामक व्यक्ति को लखनऊ से यह कहते हुए गिरफ्तार किया कि उन्होंने केस को हल कर लिया है। पुलिस ने यह भी कहा कि इन तीनों ने लूट के आरोप को कबूल कर लिया है। लेकिन पुलिस को परेशानी तब हो गई जब लखनऊ के कानटोंनमेंट इलाके से पुलिस ने तीन और व्यक्तियों को असली अपराधी के रूप में गिरफ्तार किया। पुलिस ने कहा कि वह इस नतीजे पर जांच के बाद ही पहुंची है। मृतक के ड्राईवर ने उन्हें पहचान भी लिया है। तो अब पुलिस के पास पहले तीन कथित 'आरोपियों' को छोड़ने के अलावा कोई चारा नहीं, जिसके लिए उन्होंने अदालत में आवेदन डाल दिया है।

लेकिन इसकी जवाबदेही किसके पास है कि उन 3 बेगुनाहों को किस आधार पर इतने दिन बंद रखा गया और जब उन्होंने अपराध किया ही नहीं तो पुलिस के अनुसार उन्होंने अपराध कबुल कैसे कर लिया था? क्या पुलिस किसी को पकड़ कर जबरदस्ती कबूली ले सकती है? इस 'कबूली' को लखनऊ पुलिस इतना महत्व क्यों देती है, जबकि यह अदालत में मान्य भी नहीं है?

ऐसे केस जो सिरे से नाकाम रहे या 'बातचीत' के बाद आरोप हटाया गयाः

23 जनवरी को हजरतगंज पुलिस ने अदालत में 10 सरकारी अधिकारियों को रिहा करने की अर्जी दी है, जिन्हें पुलिस के साथ झगड़े के आरोप में गिरफ्तार किया गया था। उन्हें कई आरोपों में जिनमें हत्या की कोशिश भी शामिल है, जेल भेज दिया गया था। फिर सीनियर पुलिस अधिकारियों के बीच बातचीत के बाद, अब रिहा किया जा रहा है। लेकिन सवाल यह है कि क्या हत्या की कोशिश के आरोपी को केवल बातचीत के बाद रिहा किया जा सकता है? इस बारे में हजरतगंज के थाना प्रभारी का कहना है कि असली आरोपियों की तलाश और जांच जारी है। लेकिन क्या किसी ऐसे मामले को गलत कहकर या गलती समझ आने पर केवल बातचीत के बाद छोड़ा जा सकता है?

पुलिस आमतौर से केसों को हल करने के लिए बेहद दबाव में रहती है। फिर चाहे उनके पास जांच के लिए आवश्यक ज्ञान की कमी हो या फिर मूलभूत सुविधाओं की। यह एक बड़ी समस्या है कि कानून–व्यवस्था और जांच दोनों कामों के लिए एक ही पुलिस है। जबतक व्यवस्था की यह कमी दूर नहीं की जाएगी, बेगुनाह लोग इस कमी का शिकार बनते रहेंगे।

मृत युवक की वापसी

जनवरी में आदेश सक्सेना नामक व्यक्ति को तब रिहा कर दिया गया जब मृतक वापस अपने घर पहुंचा। दरअसल 21 वर्षीय गौरव पाण्डेय जिसकी हत्या के आरोप में आदेश सक्सेना को गिरफ्तार किया गया था, ने कथित आरोपी की बेटी के साथ घर से भागकर शादी कर ली थी। सक्सेना ने गौरव और उसके मां–बाप पर अपनी बेटी के अपहरण का आरोप लगाया तो गौरव के घर वालों ने अपने गुमशुदा बेटे की हत्या का आरोप सक्सेना पर लगा दिया। पुलिस को 6 दिनों बाद बुरी हालत में एक लाश तालाब में मिली। जिसकी गौरव के पिता ने अपने बेटे की बताकर पहचान भी कर ली। सक्सेना को गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन 12 जनवरी को गौरव और नैन्सी (आरोपी की बेटी) वापस आ गए। इस पूरे नाटक ने फिर एक नया सवाल छोड़ दिया है। आखिर वह लाश किसकी थी? मगर जवाब कोई नया नहीं: 'जांच जारी है' जवाब है आशियाना थाना प्रभारी का। यह तो थोड़े उदाहरण हैं क्योंकि ऐसे केसों का कोई सरकारी आंकड़ा तो मिलना मुश्किल है। ऐसा केवल लखनऊ में हो ऐसी बात भी नहीं। ऐसे कारनामे तो हर जगह होते रहते हैं, जो एक बड़ा सवाल छोड़ जाते हैं। जिन लोगों को पुलिस गिरफ्तार करती है, क्या उनको हर्जाना मिलता है? क्या ऐसे अधिकारियों पर कोई कार्यवाही की जाती है, जो बिना उचित जांच किए इस निष्कर्ष पर पहुंचने में देर नहीं लगाते कि किसे गिरफ्तार करना है और किसे नहीं?

(सौजन्यः इंडियन एक्सप्रेस.कॉम 1 मार्च 2010)

(...पृष्ट ६ का शेष)

लम्बी जांच, कानून के अनुसार कदम उठाने में देर करना, अंधाधुंध गिरफ्तारी। एन.एच.आर.सी. की हमेशा एक बगैर दांत वाली बॉडी के रूप में आलोचना की गई है। इस आरोप पर जवाब देते हुए श्री पी.सी.शर्मा ने पहले कहा था कि ''राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग'' एक सिफारिशि बॉडी है। संसद ने इसे ऐसे ही बनाया है। लेकिन इसे एक दीवानी अदालत की ताकत भी दी गई है। हम मानव अधिकार उल्लंघन से जुड़े किसी भी व्यक्ति को बुला सकते हैं, रिकॉर्ड मंगवा सकते हैं तथा अदालत की कार्यवाही शुरू कर सकते हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एक बगैर दांत वाली बॉडी नहीं है क्योंकि इसकी 99 प्रतिशत सिफारिश मानी जाती है।''

(सौजन्यः सिफ़िन्युज़.कॉम, 29 अप्रैल 2010)

कांस्टेबल को 'कुर्सी' का अधिकार?

पंजाब में तीन कांस्टेबलों के बीच राज्य सचिवालय के गेट नं–2 पर डयुटी के समय एक मात्र उपलब्ध 'कुर्सी' पर बैठने के लिए झगड़ा हो गया। हेड कांस्टेबल बलविंदर उस कुर्सी पर जा बैठीं जहां पहले कांस्टेबल जसवंत बैठे हुए थे। इसी पर दोनों में झगड़ा होने लगा। बलविंदर का पति हेड कांस्टेबल सुखविंदर भी आ गया और मार पीट होने लगी। बचाव में सुखविंदर के कपड़े फट गए। उसने थाने में जसवंत के खिलाफ शिकायत दर्ज करवा दिया। बाद में तीनों ने समझौता तो कर लिया लेकिन एक सवाल छोड़ दिया – क्या ड्युटी के दौरान पुलिसकर्मियों के बैठने के लिए 'कुर्सी' की व्यवस्था नहीं होनी चाहिए?

(सौजन्यः इंडियन एक्सप्रेस.कॉम, 27 अप्रैल 2010)

पुलिस समाचार - हर कोने की हलचल

पुलिस मुठभेड़ों का सच

दिल्लीः पिछले 16 सालों में तकरीबन आधे पुलिस मुठभेड़ झुठे निकले। राष्ट्रीय मानव आयोग द्वारा यह जानकारी दी गई कि 1993 से 2009 के बीच पुलिस द्वारा किए गए तकरीबन 2560 मुठभेड़ों में से आधे ग़लत पाये गए हैं।

यह खुलासा दिल्ली स्थित एक कार्यकर्ता द्वारा सूचना के अधिकार के अन्तर्गत 2008–2009 में ह्युमन राइटस वॉच डॉग से पुछे गए सवालों के जवाब में किया गया। आयोग ने बताया कि 2560 केसों में से 1224 केस ग़लत मुठभेड़ के थे। इसका अर्थ है कि पिछले 16 सालों में हुए सभी पुलिस मुठभेड़ों में आधे झुठे थे। पहले आवेदन के जवाब में अक्टुबर 2008 में आयोग ने कहा ''आयोग में मौजूद रिकॉर्ड के अनुसार अब तक 2560 पुलिस मुठभेड़ के केस आयोग के सामने आये हैं जिसमें अब तक 16 झुठे केसों में मुआवज़ा दिया गया है'' पैनल ने यह भी बताया कि 2560 केसों में से 1260 ग़लत मुठभेड के केस थे जबकी पुलिस संरक्षण में 2320 लोगों की जानें गई हैं।

आयोग ने 1260 केसों में से केवल 16 केसों में ही मुआवज़ा क्यों दिया? इसका जवाब आयोग को देना चाहिए। साथ ही पुलिस संरक्षण में हुए 2320 मौतों का क्या रहा? क्या इनके परिजनों को भी मुआवज़ा दिया गया? क्या ज़िम्मेदार अधिकारियों पर कोई कार्यवाही की गई?

(सौजन्यः ई–पेपर, हिन्दुस्तान टाईम्स.कॉम, 26 मार्च 2010)

ऑनलाईन ट्रैफिक पुलिस कम्पलेंट

नई दिल्लीः अब जब कभी कोई ट्रैफिक पुलिसकर्मी ग़ैर कानूनी तौर से परेशान करे जैसे चालान की रकम से ज्यादा पैसे मांगे या बिना रसीद के पैसे मांगे तो आप ऐसी शिकायत दिल्ली ट्रैफिक पुलिस की वेबसाईट www.delhitrafficpolice.nic.in पर कर सकते हैं।

संयुक्त पुलिस आयुक्त (ट्रैफिक) ने कहा कि 'हजारों लोग रोज हमारे ग्राउंड स्टाफ़ के सम्पर्क में आते हैं जिनका अनुभव उनसे अच्छा नहीं होता। अब वह अपनी शिकायत या सुझाव हम तक पहुंचा सकते हैं। शिकायत के सत्यापन के बाद सम्बंधित कर्मचारी पर उचित कार्यवाही की जा सकेगी।' विभाग कि यह कोशिश सराहनीय है।

(सौजन्यः टाईम्स ऑफ इंडिया, 6 फरवरी 2010)

लुधियाना में 200 कॉन्सटेबल और अधिक पी.सी.आर. वेनो की मांग

लुधियानाः पुलिस कमिश्नर ने बताया कि शहर में पुलिस की कमी है, इसे दूर करने के लिए 200 कॉन्सटेबलों के लिए स्वीकृति ले ली गई है। यह कॉन्सटेबल पी.ए.सी. के कमाण्डों होंगे जिनमें से कुछ को शहर की ट्रैफिक पुलिस को दिया जायेगा जिससे गाड़ियों की आवाजाही को ठीक किया जा सके, जो कि शहर की एक बहुत बड़ी समस्या है।

कमिश्नर ने 15 जिप्सी की मांग की है जिसे पी.ए.सी. वैन की तरह इस्तेमाल किया जाएगा। यह मांग डी.जी.पी. कार्यालय को भेजी गयी है। शहर की 30 लाख आबादी के लिए सिर्फ 3000 पुलिस कर्मी मौजूद हैं। उनमें से भी 147 अधिकारी वी.आई.पी. सुरक्षा में लगे हैं। यहां सारे थानों में ज़रूरत से केवल 25 प्रतिशत अधिकरी हैं जिनपर पूरे थाने के काम–काज की ज़िम्मेदारी है।

चंडीगढ़ में तकरीबन 10 लाख की आबादी के लिए केवल 350 ट्रैफिक पुलिस हैं। लेकिन वहीं लुधियाना में जो कि ट्रैफिक से मृत्यु होने वाले शहरों में 17 वें नम्बर पर है, सिर्फ 200 ट्रैफिक पुलिस हैं। लुधियाना की ट्रैफिक को बेहतर करने के लिए ट्रैफिक पुलिस में कॉन्सटेबलों की भर्ती के फैसले को एक अच्छा कदम बतलाया गया है।

(सौजन्यः टाईम्स ऑफ इंडिया, 22 फरवरी 2010)

पुलिस के खिलाफ शिकायत?

गांधीनगरः जो लोग पुलिस के खिलाफ शिकायत करना चाहते हैं, वह अपनी शिकायत सीधे राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण या सम्बंधित जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण को कर सकते हैं। यह ऑथोरिटी हाल ही में राज्य सरकार द्वारा स्थापित की गई है। राज्य सरकार ने हर एक जिले के लिए एक जिला शिकायत प्राधिकरण बनाया है। राज्य प्राधिकार डिप्टी सुपरिटेंडेंट और उनसे ऊपर के अधिकारियों से सम्बंधित शिकायतों की जांच करेंगे। जबकि जिला प्राधिकरण एक जिले के बाकी सारे अधिकारियों से सम्बंधित शिकायतों की जांच करेंगे।

(सौजन्यः डी.एन.ए.इंडिया.कॉम, 7 मार्च 2010)

महिलाओं के लिए 20 स्पेशल सेल

पुणेः पुलिस ने शहर के 20 थानों को चुना है, जहां महिलाओं के लिए स्पेशल सेल शुरू किए जाएंगे और इन्हें सब इंस्पेक्टर तथा असिस्टेंट सब इंस्पेक्टर दर्जे की महिला अधिकारियों द्वारा चलाया जाएगा। शहर में महिलाओं के खिलाफ़ बढ़ते अपराधों की आलोचना के बाद यह शुरूआत की जा रही है।

गृह मंत्री श्री आर.आर.पाटिल ने हाल ही में घोषणा की थी कि महिलाओं के नेतृत्व में मुंबई, नागपुर तथा पुणे में थाने चलाए जाएंगे। पुणे में कोई भी इंस्पेक्टर श्रेणी की महिला मौजूद नहीं है, इसलिए सब इंस्पेक्टर तथा असिस्टेंट सब इंस्पेक्टर ही इन थानों का नेतृत्व करेंगी।

श्री अनिल कुंभारे (डी.सी.पी.,अपराध) ने बताया ''यह स्पेशल सेल खासतौर से औरतों की शिकायतों को देखेगा। महिला इंस्पेक्टर शहर के 20 थानों में मौजूद हैं जहां जल्द ही महिला सेल शुरू किये जाएगें। बाद में बाकी के 7 थानों में भी ऐसे सेल शुरू किए जाएंगे।''

(सौजन्यः इंडियन एक्सप्रेस.कॉम 28 अप्रैल 2010)

लोक पुलिस के इस अंक में कई लेख हैं। इन्हें पढ़ते हुए आपके मन में कई विचार उभरकर आए होंगे। हो सकता है आपकी राय में हमसे कुछ छूट गया हो या हमारा दृष्टिकोण निष्पक्ष न हो। हम आपके विचार जानना चाहेंगे। कृपया अपने विचार हमें भेजें। हम उन्हें आपके नाम या अज्ञात, जैसा आप चाहेंगे, लोक पुलिस में छापेंगे। आपकी राय महत्वपूर्ण है। आपकी राय ही बदलाव लाएगी।

सी.एच.आर.आई., नई दिल्ली कार्यालय, बी–११७, प्रथम तल, सर्वोदय एन्कलेव, नई दिल्लीः११००१७, भारत
टेलीः +९१ ११ ४३१८ ०२००, फैक्सः +९१ ११ २६८६ ४६८८, info@humanrightsinitiative.org, www.humanrightsinitiative.org